ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 244-247
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

मेरा बचपन मेरे कन्धों पर : दलित जीवन संघर्ष की त्रासदी

डॉ0 प्रसेन जीत सागर

हिन्दी विभागाध्यक्ष– डॉ0 राजेश्वर सेवाश्रम महाविद्यालय डिंडुई, प्रतापगढ़ (उ0प्र0) भारत

Received-13.12.2022, Revised-19.12.2022, Accepted-24.12.2022 E-mail: prasenjeetsagarhindi@gmail.com

सारांशः ***दलित साहित्य के क्षेत्र में डॉ0 श्यौराज सिंह बेचैन एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उन्होंने कविता, आलेख, निबन्ध, पत्रकारिता आदि के क्षेत्र में अपनी लेखनी चलायी है। उनकी आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर' बालश्रम और स्त्री की मर्मस्पर्शी कथा–व्यथा को अभिव्यक्त करती है। सन् 2009 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित श्यौराज 'बेचैन' की आत्मकथा का यह प्रथम भाग है जिसमें बालश्रमिक के रूप में उनके संघर्षपूर्ण बचपन की कथा है। आत्मकथा का प्रथम बारह शीर्षकों में उनकी प्रारम्भिक जीवन–कथा और कक्षा दस तक के शिक्षा काल को सामने लाता है। बाल अछूत की यातनापूर्ण कथा–व्यथा का वर्णन इस आत्मकथा में है। दलित समाज में पैदा होने के कारण मनुवादी सामाजिक व्यवस्था द्वारा निर्धारित जातीय बेड़ियां डाल दी जाती हैं। लेखक का जीवन इन्हीं बेड़ियों में ही गुजरा है। गुलामी की जंजीरों को तोड़कर वे मुक्ति पाने के लिए जीवनभर संघर्ष करते रहे। विषमतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था ने आगे नहीं बढ़ने दिया। भारतीय समाज में सवर्णों ने दलितों के लिए यातनापूर्ण वातावरण बनाया था जिसके परिणामस्वरूप दलितों के जीवन में अशिक्षा, गरीबी, अभाव, भूख, भेद–भाव, छुआछूत, शोषण, उत्पीड़न आदि व्याप्त रहा है। डॉ0 श्यौराज सिंह बेचैन भी इसी विषमतापूर्ण समाज व्यवस्था के शिकार हैं। लेखक का जीवन पारिवारिक उपेक्षा का भी शिकार हुआ। उन्हें स्नेह और सहयोग सिर्फ माँ से ही प्राप्त हुआ। लेखक की पाँच–छह वर्ष की उम्र में ही उनके पिता का देहान्त हो जाता है और घर की जिम्मेदारियां असमय उनके कन्धे पर आ जाती है।***

कुंजीभूत शब्द– दलित साहित्य, कविता, आलेख, निबन्ध, पत्रकारिता, आत्मकथा, कथा–व्यथा, प्रकाशित, परिवारिक।

लेखक के पिता राधेश्याम की मृत्यु के बाद उनकी जिन्दगी एकदम गरीबी में डूब गई। गरीबी से विवश होकर उनकी माँ उनसे कहती है "अब तोइ अपनी जिन्दगी अपनी कमाई में गुजारनी है। जिद्द छोड़, कछु काम सीख ले। कछु नाँय तो साइकिल में पिंचर जोड़ना ही सीख ले।"[1] इस छोटी से उम्र में जीवन मुश्किलों से भर जाता है। इस तरह यह आत्मकथा बालश्रम के लिए मजबूर दलित बचपन की त्रासदीपूर्ण जीवन का दस्तावेज है।

लेखक के परिवार में तीन पुरुष नेत्रहीन थे तथा कमाऊ पिता की मृत्यु हो चुकी थी। पच्चीस वर्षीय मां अशिक्षित, असहाय थी। गरीबी व इलाज की कमी से छोटा भाई भी असमय काल के गाल में समा जाता है। ऐसी स्थिति में गोबर से निकला गेहूं का दाना और विषाक्त ढड़ाइन तक पेट की भूख मिटाने का उपाय बनता है। घर की आर्थिक स्थिति दयनीय होने के कारण बेचैन को बाल्यावस्था में ही पैतृक पेशा एक मात्र उपाय था–"उठा सको तो उठाओ बेटा गाँव–भर की मुर्दा मवेशियां जो तुम्हारे नाजुक कन्धों को बेताबी से इन्तजार कर रहीं हैं।

भूखे हो तो खाओ मुर्दा मवेशियों का मांस और चाहिए चार आना, आठ आना तो, लम्बरदार की जाकर करो बेगार, हाँको रहटें–दाँये, उठाओ गोबर और डालो भूसा।"[2] समाज में दलितों पर जो काम थोपा गया उसमें गन्दगी साफ करना प्रमुख है। दलितों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति दयनीय होने के कारण विवश होकर करना पड़ता है। इसी तरह के कार्य के कारण लेखक और परिवार वालों को समाज ने बहिस्कृत कर रखा था। "डॉक्टर मनुष्य की लाश का पोस्टमार्टम करता है तो इज्जतदार होता है। भंगिन सफाई करती है तो दुत्कारी जाती है। चमार पशु का खाल उतारता है तो, वह बहिष्कृत और अछूत बना रहता है। मैं यह सब सहता रहा हूँ, इसलिए जानता हूँ कि आखिर भोगी हुई हिकारत का असर और भूख में अभोज्य का स्वाद कैसा होता है?"[3]

दलित आत्मकथाओं में दलित समाज की यातना, पीड़ा के अनुभव की प्रामाणिकता है। इन आत्मकथाओं में दलित समाज जातीय उत्पीड़न, शोषण, सवर्णों की विकृत मानसिकता, अछूत बच्चों और स्त्रियों के नारकीय जीवन, अपमान, उपेक्षा और आक्रोश का विस्तृत वर्णन मिलता है। वस्तुतः दलित आत्मकथाएं वेदना और यातना का साहित्य है। दलित साहित्य में सहानुभूति की नहीं अनुभूति की तीव्रता अधिक है। दलित आत्मकथाएं जातिभेद तथा वर्णभेद पर बनी उस ब्राह्मणवादी विचारधारा और उसके पाखण्ड पर प्रहार करती है। साथ ही जाति व्यवस्था के खिलाफ संघर्षरत शक्तियों को ऊर्जा प्रदान करती है।

दलित आत्मकथाओं में घृणा, शोषण, दमन, असमानता, अत्याचार का अन्तहीन सिलसिला है। दलित समाज के लोग बुनियादी आवश्यकताओं से वंचित थे। दलित अभाव का जीवन जीते हैं। रोटी, कपड़ा और मकान मयस्सर नहीं होता है। पढ़ाई

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

के लिए किताब खरीदने का पैसा भी नहीं मिलता है। किताब खरीदने के लिए श्यौराज पैसा चुराता है और पिटाई उसके माँ की होती है–''छाती पर लात मारी थी डल्ला ने। माँ के स्तनों का आधा भाग नीला पड़ गया था। मैं मेरी बहन कमर, मुँह और छाती पर हल्दी पोतते रहे। मैं समझ गया। माँ के गुप्तांगो पर भी गहरी चोटें लगी थीं। मैं बाहर निकल गया, तब बहन ने वहाँ हल्दी पोती और मैं थोड़ी देर बार फिर घर में आया।''[4] बेचैन की माँ को जीवन–यापन के लिए क्रमशः अन्य दो पुरुषों को जीवन साथी बनाना पड़ता है। वह हाड़तोड़ परिश्रम के बाद भी सम्मानविहीन जीवन जीने के लिए विवश है।

शिक्षा के अभाव में दलित समाज अन्धविश्वास, पाखण्ड में आकंठ डूबा हुआ है। भगवान का भय, स्वर्ग–नरक, भूत–प्रेत आदि कुरीतियों के कारण दलित समाज त्रासदीपूर्ण जीवन जीता है। दलितों में गहरी अज्ञानता, अशिक्षा और अन्धविश्वास के कारण बीमार पड़े लोगों को वे अस्पताल नहीं ले जाते।

बल्कि सयानों के दल को बुलाकर झाड़–फूँक करवाते हैं। ''जब तक बड़े 'सयानों–ओझाओं' द्वारा चौराहे वाली से बड़े देवी–देवता नहीं बुलायें जायेंगे तब तक राधे का इलाज नहीं हो सकेगा। 'प्यारे' चच्चा को यह बात पता थी कि नदरोली में मक्खन और खचेरी के सिर पर 'बंगाली बाबा', 'सैयद बाबा' और 'भोरपुर' वाली चामुण्डा खेलती है। यदि वे आ जाएँ तो राधे के सिर से बड़े से बड़ा भूत उतर सकता है। अपने देवी–देवता सभी के देवी–देवताओं से अधिक शक्तिशाली हैं, यह भ्रामक सोच हमारे जाति बन्धुओं में अभी तक कायम है।''[5]

ऊँच–नीच और छूआछूत की समस्या सवर्ण और दलित के बीच ही नहीं बल्कि दलित जातियों में भी फैली हुई थी। चमार, जाटव, भंगी, चूहड़ा, वाल्मीकि आदि जातियों में भी भेद–भाव के कारण आपस में संवाद नहीं होते जबकि उनकी एकता आवश्यक है। दलितों के बीच भेद–भाव को लेखक ने स्पष्ट किया है– ''यह जगह टीले जैसी ऊँची थी; जिस पर भंगी और चमार साथ–साथ रहते थे। हम चमार जाने क्यों खुद को ऊँचा और भंगियों को नीचा समझते थे। दस जने एक नीम के नीचे बैठकर भी भेद दर्शाने के लिए चमार मिट्टी के ऊँचे टीले पर और भंगी निचली जगह पर बैठकर लम्बे–लम्बे किस्से कहानियां सुनाया करते थे। बीच में कोई यादव या मुसलमान आ जाता तो भंगी–चमार दोनों अपनी खाटें या ऊँचा टीला छोड़ नीचे जमीन पर बैठ जाते थे।''[6]

लेखक को बचपन में खेतों पर निराई–कटाई–जुताई–बुवाई से लेकर भट्ठे पर पथेरों को गोंदा मिट्टी देने, मोचीगिरी, राजमिस्त्री के काम के अलावा चाय पिलाने, नींबू और अण्डा बेचने, बाजे वाले के साथ ढोल पीटने, होटल में बर्तन माँजने, घरों में अखबार डालने आदि कई तरह के कार्य अलग–अलग जाकर करने पड़े। मौसेरे भाइयों को पढ़ते देखकर उनमें भी पढ़ने की ललक पैदा हुई किन्तु पेट के खातिर काम करना उनकी मजबूरी थी।

गरीबी, अशिक्षा से मजबूर विवश ग्रामीण अंचल के बालक किस तरह का जीवन जीने के लिए मजबूर हैं, इस आत्मकथा में उसका विशद चित्रण मिलता है। पिता की अनुपस्थिति, मां की असहाय स्थिति, घर–बाहर के ज्यादातर परिचत द्वारा शोषण का शिकार होना। ऐसी विषम परिस्थिति में भी बालक श्यौराज के संघर्षशील होने के कारण शिक्षा प्राप्त करने की जिजीविषा बनी हुई है।

''बीबी जी, आप कहती थीं कि काम के साथ पढ़ूँ भी। सो आज से मैं स्कूल जाऊँगा। शाम के स्कूल में मेरा दाखिला हो रहा है। अब हर दिन मैं दोपहर तक नींबू बेचकर उसके बाद स्कूल जाया करूँगा।''[7]

श्यौराज बेचैन का बचपन पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक विसंगतियों से जकड़ा था। वे विपरीत परिस्थितियों में अपनी रोजी–रोटी की व्यवस्था करते हुए स्कूल की प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करते हैं। पिता की मृत्यु के बाद नेत्रहीन परिजनों व सौतेले पिता के कारण विवश मां से उन्हें दो वक्त की रोटी का भी सहारा न था। लेखक अपने पूर्वजों की भांति वर्तमान पीढ़ी के कई सदस्यों को भी अमानवीय जीवन जीते हुए पाते हैं। जीवन में कई तरह की समस्याओं को लेखक ने झेला है। लेखक ने पढ़ाई के लिए अपने बिरादरी भाइयों में कह चुका था–'मुझे पढ़ने को मिले तो मैं अक्षरों के बदले अपने शरीर के खून की बूँदे भी दे दूँगा।''[8]

अस्यपृश्यता के पालन द्वारा समाज इन्सानियत को भूल जाता है। इस आत्मकथा में प्रेमपाल सिंह की पत्नी आशा के शब्दों में छुआछूत की भावना देख सकते हैं। यादव प्रेमपाल सिंह के घर और खेत का सारा काम श्यौराज करते हैं, बदले में उन्हें रोटी मिलती है और पढ़ाई भी कर सकते हैं।

प्रेमपाल आर्यसमाज के प्रवर्तक होने के कारण छुआछूत को नहीं मानते। इसीलिए वे श्यौराज को अपने घर में रखते हैं। परन्तु संस्कृत अध्यापक सियाराम आर्य ने ये सब देखकर दूसरे शिक्षक से कहा–''चमार के हाथ से छिली हुई सब्जी खाना अच्छी बात है क्या?

तुम खा पाओगे तोमर साहब? मेरे तो गले के नीचे नहीं उतरेगी एक अछूत के हाथ से छुई हुई सब्जी, प्रेमपाल जी

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

सन्त हो गये होगें। पर हम सब तो सामान्य अध्यापक ही हैं।"[9]

"प्रेमपाल जी आप इस लड़के को थोड़ा अलग रखकर दूसरी तरह की मदद करें तो करें पर चमार का छुआ हम नहीं खा सकते। खान–पान एक हो गया तो चमारों और यादवों में अन्तर ही कहाँ रह जाएगा?"[10] दलित उत्पीड़न की निर्माणशाला सिर्फ सामाजिक संस्थाएं ही नहीं, शैक्षणिक संस्थान भी हैं, जहाँ दलितों को आज भी शिक्षा ग्रहण करने में अनेक बाधाओं को पार करना होता है। द्रोणाचार्य के वंशज आज भी एकलव्य का अगूँठा काटने का षड़यन्त्र रचते हैं। जाँत–पाँत की भावना से ऊपर उठकर यदि कोई व्यक्ति मैत्रीभाव स्थापित करना चाहता है तो वर्ण–व्यवस्था की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उसे ही सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगता है।

शिक्षा हेतु संघर्ष प्रत्येक दलित आत्मकथा लेखक के अस्मिता में बदलाव लाने में विशेष महत्व रहा है। लेखक बचपन में कठोर परिश्रम कर स्वयं रोटी और फिर पुस्तकों की व्यवस्था करता है। फुटपाथ से खरीदी गई पुस्तकें लेखक के अध्ययन का आधार बनती हैं।

गरीबी, अज्ञानता के शाप से ग्रसित लेखक शिक्षा के माध्यम से मुक्ति के रास्ते को खोजने में सफल होता है। वे अपने जीवन से मुक्ति के रास्ते को खोजने में सफल होता है। वे अपने जीवन में कटु, कठोर अनुभवों के द्वारा ही वे जीवन की यथार्थ शिक्षा पाते हैं। लेखक में विपरीत परिस्थितियों में भी शिक्षा प्राप्त करने का जुनून है। आत्मविश्वास से बाल्यावस्था में चुनौतीपूर्ण निर्णय लेते हैं। "मैं पढंगो, एक फेरा कोशिश जरूर करंगो। अगर दसवीं पास नाँय करि पाओ, तो हार मान लिंगो, पर बिना कोशिश करे तो नाँय मानंगो। कोई मेरो संग्गु देउ या मत देउ। मैं एक–एक अक्षर के बदले अपने खून की एक–एक बूँद दे दुंगो पर पढ़नो नाँय छोडंगो।"[11]

लेखक को अपने जीवन संघर्ष में जो बल शिक्षा से प्राप्त हुआ, वही अशिक्षित जनमानस, लोक संगीत, गीत और पर्वों के द्वारा भी प्रेरणा प्राप्त होती है। मां और बाबा के जीवन में लोकगीतों से सकून दिखाई देता है। गीत विरह का था जिसमें घर की दयनीय स्थिति का चित्रण था। लेखक ने अपने कवि सामर्थ्य से उसे अपने अनुसार चित्रित किया है–

टूटी डाल झरीं सब पतियाँ,
डाल भई लाचार,
बिधाता ने कैसी विपदा डारी रे!
माँगत फूल हवा और पानी
रुत निरमोहिन ने का ठानी?
काते कहें कौन दुख बाँटे,
कौन करे रखवारी रे!
बेवक्त गुजर गया माली... रे...

'मेरा बचपन मेरे कन्धों' में सूरजमुखी, गंगी बब्बा, ताऊ बाबूराम, मौसा देवीदास, भिकारी, प्रेमपाल सिंह यादव आदि ऐसे चरित्र हैं, जिनके सान्निध्य ने लेखक के जीवन को गहरे तक प्रभावित किया है। पाली, चन्दौसी, नदरौली के अतिरिक्त दिल्ली, बाजपुर, कसेर आदि जगहों पर रोजी–रोटी के लिए भटकते–फिरते रहे।

लेखक ने अपने जीवन की अनेक छोटी–छोटी स्मृतियों, पात्रों और घटनाओं को आत्मकथा में रेखांकित किया है। लेखक का मानना है कि गरीबी ने उनकी लेखनी को समृद्ध किया है। प्रेमपाल सिंह यादव ने सर्वप्रथम उनकी प्रतिभा को पहचाना और स्कूली शिक्षा के लिए प्रेरित किया।

ओमप्रकाश वाल्मीकि, डॉ0 तुलसीराम तथा श्यौराज सिंह बेचैन के आत्मकथन से स्पष्ट है कि सर्वाधिक विपरीत परिस्थितियों ने ही सभी को गढ़ा है। यह आत्मकथा सिर्फ एक अछूत की आत्मकथा नहीं है बल्कि सम्पूर्ण दलित समाज का चित्रण है। विद्रोह की आवाज कम है, क्योंकि दयनीय आर्थिक स्थिति में लेखक सब कुछ सहने के लिए विवश है। लेखक ने अपने जीवन की सारी घटनाओं को निर्भय होकर ईमानदारी से प्रस्तुत किया है।

सदियों से हो रहे दलितों पर अन्याय, उत्पीड़न, यातना को बेपर्दा किया गया है। यह आत्मकथा एक दलित बालक की पीड़ा की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। साहित्य में जातीय मानसिकता का आत्मपरीक्षण तथा शोषण, अन्याय के विरूद्ध अपनी स्पष्ट विचारधारा को बेबाक प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष– यह आत्मकथा बचपन से वयस्कता तक, बच्चे से पुरूष बनने तक एक दलित बालक की पीड़ा को अभिव्यक्त करने का महत्वपूर्ण दस्तावेज है, जो साहित्य में जातिवादी मानसिकता को आत्मपरीक्षण करने तथा अन्याय, शोषण, यातना के विरूद्ध अपनी बेबाक टिप्पणी करता है। यह आत्मकथा मानव जीवन की त्रासदी और विडम्बना को उजागर करती

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

है और मानवीय गरिमा की पक्षधरता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्यौराज बेचैन, मेरा बचपन मेरे कन्धों पर (आत्मकथा), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2013, पृ0 40, 41
2 वही, पृ0 27
3. वही, पृ0 31
4. वही, पृ0 63
5 वही, पृ0 16
6. वही, पृ0 82
7. वही, पृ0 207
8. वही, पृ0 340
9. वही, पृ0 372
10 वही, पृ0 301
11. वही, पृ0 33

*****